लेख: श्रीराम नरसिम्हन | स्तिथी: विद्यार्थी, ३१ जनवरी २०१२ | यह लेख मात्र सुझाव है | **पूर्ण सुचना के लिए श्री नागराजजी के साथ हुए संवाद देखें |**

‘अभ्यास-अध्ययन प्रक्रिया’ संबंधी सामान्य स्पष्टीकरण

1) पृष्ठभूमि:

समझना और जीना, मेरी आवश्यकता हैं,लक्ष्य हैं, यह तय होने के साथ ही अध्ययन के लिए प्रयास प्रारंभ हैं| ऐसा ‘लक्ष्य’ बनना, गोष्टी, शिविरों के माध्यम से होता है| हमारे पुराने मान्यता, कार्यक्रम, जीने की विधि होते हैं, यह मूल्यांकित होकर ‘पूरा समझने, जीने’ के लिए आवश्यकता प्राथमिकता में आने के लिए समय लग सकता हैं|

“अध्ययन” का प्रारंभ ‘शोधपूर्वक’मानने से ही होता ही| जाने नहीं रहते है – इसीलिए अध्ययन आवश्यक हैं|अध्ययन की आवश्यकता के लिए प्रसतावको स्वयं के अधिकार पर जांचने की विधि:

- **४ मापदंड (Parameters):**

o (a) सार्वभौम (b) सार्वकालिक (c) समझा सके (d) जीने में आये

- **इसके अलावा :**

o (e) स्व-शुभ और सर्व-शुभ होना (f) सम्पूर्ण होना (g) अस्तित्व सहज, मानव सहज होना (h) तर्क संगत होना

- उपरोक्त निष्कर्ष के लिए हम अपने अधिकार पर ३ आयाम में जांचते हैं:

o (i) स्वयं में क्रियाओं के रूप में;

o (ii) आचरण/संबंध में एवं;

o (iii)अस्तित्व सहज वास्तविकता के रूप में

इसमें एक स्तिथि आती हैं, जिसमे उपरोक्त जांचने के विधि अनुसार हमारे में 'शंका' शेष नहीं रह जाता |हमारा तर्क तृप्त होता हैं और केवल जिज्ञासा के लिए, समझने के लिए, समझाने वाले के सामने प्रस्तुत होते हैं, तर्क-कुतर्क के लिए नहीं |'वास्तिविकता जैसे हैं, उसे वैसे ही समझना हैं', उसपर अब हमारा अपना कोई तर्क या शर्त नहीं हैं, इस स्तिथि में आना |समझाने वाला व्यक्ती वस्तु में पारंगत हैं, इस 'जांचपूर्वक स्वीकृती' के साथ ही अध्ययन 'हो पाता हैं |अन्यथा, हम सुनते नहीं हैं, समझाने वाले में त्रुटि ढूँढ़ते रहते हैं एवं वस्तु का अपने मन अनुसार कोई तर्जुमा बना लेते है| इस विधि से हमारा कल्पनाशीलता 'शंका' में लगे रहता हैं, न की 'वस्तु' समझने में |

(ए न)["...अध्ययन तभी होता है जब स्वयं में यह स्वीकार हो जाता है, कि अध्ययन कराने वाला प्रमाणित है| यही व्यक्ति प्रमाण का आधार है" – *स्त्रोत: संवाद भाग १, संस २०११, पृ ७५*]

2) अध्ययन "शोध" की प्रक्रिया है

- अध्ययन "समझने के वस्तु" के 'शोध' की प्रक्रिया हैं, जो स्वयं के अधिकार पर होना हैं | तुलनात्मक अध्ययन (दूसरे विषयों, विचारधाराओं के साथ) , जोड़-घटाना, 'अध्ययन' नहीं हैं |
- शब्दों-परिभाषाओं का श्रवण-स्मरण होने में, इनमे शोध होने में, अंतर्संबंध पर ध्यान जाने में, स्पष्ट होने में समय लगता हैं| पहले कुछ समय लगकर पुस्तकों का गहन अध्ययन करना पड़ता हैं, शब्द-वाक्य कुछ समय के अन्तर सरल लगते हैं, जैसे जैसे समझ में आता हैं, श्रवण और मनन की गति बढ़ जाती हैं| शास्त्राध्ययन, मनन में 'रस' आता है|
- प्रचिलित शिक्षा एवं मध्यस्थ दर्शन के अध्ययन में मुख्य अंतर यह हैं कि प्रचिलित शिक्षा की वस्तु भौतिक-रासायनिक संसार केरूप-गुण तक सीमित हैं, उसकी लम्बाई-चौढ़ाई-ऊंचाई होती हैं, इसीलिए प्रिय-हित-लाभ के तुलन दृष्टियों से दृष्टी-गोचर प्रधान विधि से इसका अध्ययन हो जाता हैं –यह अध्ययन जीने के लिए नहीं हैं| यह सूचना, तकनीकी तक सीमित हीं| इसमें पुस्तकों का अध्ययन हैं: मात्र स्मरण पूर्वक विशलेषण करने से काम चल जाता हैं| इसमें रूप-गुण सीमा में चीजें कटी हुई होती हैं, विखंडन विधि से अध्ययन हैं|

- मध्यस्थ दर्शन के माध्यम से वास्तविकता के सम्पूर्ण आयामों के अध्ययन के लिए न्याय-धर्म-सत्य दृष्टियों का प्रयोग आवश्यक हो जाता हैं, क्योंकी यह वस्तु स्वभाव-धर्म-सत्य संबंधी हैं – यह आयाम **समझ** में आते हैं, आँखों में आते नहीं – ज्ञान गोचर प्रधान हैं; यह 'वस्तु' कटा हुआ नहीं हैं, सारा 'जुड़ा' हुआ हैं, सार रूप में समझ में आता हैं, रूप-गुण-स्वभाव-धर्म-सत्य के समग्रता में अध्ययन हैं|
- इसीलिए नए सीरे से इसका अध्ययन आवश्यक हैं| प्रचलन से मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन वस्तु भी भिन्न हैं, प्रक्रिया भी, फल-परिणाम भी| यह स्वयं समझने, जागृत होने, सहअस्तित्व में जीने के लिए है (आचरण), जबकी प्रचलित अध्ययन सूचना के लिए, दूसरों को सुनाने के लिए, प्रतिस्पर्धा के लिए, सुविधा-संग्रह के लिए हैं| अभी के आधुनिक शिक्षा विधि से (जिसका हमें अभ्यास हैं) वास्तविकता का मध्यस्थ दर्शन के माध्यम से अध्ययन सफल होता नहीं|
- विगत के अन्य दर्शन-शास्त्र के विधियों से भी मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन संभव नहीं हैं|

3) अध्ययन स्वयं में होता हैं| पुस्तकों में नहीं

- पुस्तक सूचना हैं | लिखना, पढ़ना, ऑडियो-विडियो, स्मरण के लिए, शोध के लिए, श्रवण बन्ने के लिएतय्यारी हैं | मात्र पढ़ना अध्ययन नहीं हैं | अध्ययन (श्रवण, मनन, साक्षात्कार-बोध) स्वयं में होना हैं, बाहर नहीं |
- अत: यह अध्ययन स्वयं के जागृति के लिए, जीने के लिए है| इसीलिए, इसमें सूचना पुस्तक से 'स्वयं' में आना, 'श्रवण' होना आवश्यक हैं| उसी के पश्च्यात मनन संभव है – जो स्वयं में ही होता हैं, बाहर नहीं|
- *(ए न)*["अभी तक यह मानते हैं की कान में अध्ययन है| कान से जो सुनाई पढता है, उसके अर्थ में अध्ययन है" – *संवाद भाग१ , सं २०११, पृ ७६*]

4) अध्ययन क्रम में स्तिथियाँ जुड़े हैं:

'शास्त्राध्ययन' के साथ साथ 'श्रवण' होना हैं| इसी के साथ/पश्च्यात, (मनन) शोध प्रक्रिया होना है एवं चित्त-वृत्ति केन्द्रीभूत होकर, तदाकार होना, क्रम से साक्षात्कार-अध्ययन बोध होता है| हर कड़ी, दुसरे कड़ी से 'जुड़ा' हैं – 'कटा' नहीं हैं| हर कड़ी अपने अधिकार में आने से आगे की कड़ी में

प्रखरता, प्रौढता बढती हैं, हमारी 'ग्रहण-क्षमता' बढती हैं | यही 'प्राथमिकता' है | 'श्रवण'होने में, 'मनन' पूर्वक तदाकार होने की क्षमता विकसित होने में समय लगता हैं |

5) लक्ष्य 'आधा' नहीं होता:

- हमारा 'लक्ष्य' पूरे समय स्वयं प्रमाणित होने/जीने के लिए होना है; स्वयं वस्तु समझने के लिए होना है | किसी 'बीच की स्तिथि' के लिए नहीं (जैसे "पहले 'श्रवण' करेंगे, बाद में 'मनन' के बारे में सोचेंगे", अथवा "मनन हो जाए, बाद में अर्थ का देख लेंगे"; "समझेंगे, बाद में जीने का सोच लेंगे") - ऐसा होता नहीं| वस्तु हमारा स्वत्व हो जाये, स्वयं प्रमाणित होना हैं, इस इच्छा के बिना तुलन ही होता नहीं, श्रवण ही ठीक से होता नहीं, अर्थात चित्त-वृत्ति में लक्ष्य ही बनता नहीं, फलस्वरूप, अध्ययन होता नहीं| हम 'चाहते' हैं, तो समझ में आता हैं| समझ में नहीं आता हैं का तात्पर्य हम 'चाहते' नहीं हैं – चित्त (चित्रण, इच्छा में) कोई विपरीत कार्यक्रम हैं, 'चाहना' केवल 'भाषा', बोलने तक रह गया|

6) समझा हुआ व्यक्ती ही समझाता है:

- सम्पूर्ण पुस्तक, वांङ्मय, सूचना ही है, यह निर्देशिका के रूप में है| समझ, ज्ञान का धारक वाहक मानव ही हैं| मानव ही पुस्तक को समझाता हैं, समझता है|
- *(ए न)* [" प्रत्येक इकाई का सर्वांगीण दर्शन उसके रूप, गुण, स्वभाव व् धर्म से होता है| इनमे से रूप, गुण और स्वभाव समझ में आता है और धर्म की मात्र अनुभूति ही संभव है, जो अनुभव प्राप्त इकाई द्वारा एक प्रक्रियाबद्ध अनुभव के सम्भावना पूर्ण **आदेश, सन्देश एवं निर्देश** व् अध्ययन से संभव है *–स्त्रोत: व्यवहार दर्शन, संस २०१०, पृ २११*"]

7) समय

- समझना 'समय सारणी' अनुसार नहीं चलता अपितु अध्ययन एक निश्चित प्रक्रिया हैं |'प्राथमिकता' ही हमारी अर्हता, पात्रता हैं | अभ्यास-अध्ययन प्रक्रिया के कड़ियों पर और 'वस्तु' के रूप में मध्यस्थ दर्शन वांङ्मय में जितने बिंदु दीये हैं, इनपर क्रमश: ध्यान

जाता है| इसको कितने जल्दी हम 'पचा' पाते हैं, हमारे स्वयं के प्राथमिकता, आवश्यकता, पर निर्भर कर्ता है

- 'ज्यादा समय' शास्त्राभ्यास, 'स्वयं में जांचने' की क्षमता विकसित होने में, और इससे 'श्रवण' पर अधिकार बन्ने में, 'प्राथमिकता बन्ने' में, लगता हैं |

- **अध्ययनमें 'आवेश'नहींहैं: यह जीने की बात हैं:**

o यह कोई 'परीक्षा' नहीं है | इस प्रक्रिया में कोई 'आवेश' नहीं हैं | स्वयं संतुलित में रहते होता हैं | यह लंबे समय 'एकांत' में करने वाली प्रक्रिया नहीं हैं |यह जीने की बात हैं, व्यवहारिक प्रक्रिया हैं|

- जीते हुए समझते हैं | समझते हुए जीते हैं, और दूसरों को ''बताते, ध्यानआकर्षण'' करते हैं | पूरा समझकर जीते हैं, और ''समझाते'' हैं

8) शब्द-परिभाषा:

- ''साक्षात्कार-बोध-अवधारणा-अनुभव; श्रवण-मनन-निदिध्यासन; भास-आभास-प्रतीति''; 'ध्यान': विगत के, परंपरा के शब्द हैं | इनहे पुनर-परिभाषित किया गया हैं | मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन विधि विगत के विधियों से भिन्न हैं | इसे नए परिभाषा सहित समझना होगा|

9) जागृत होना:

- 'व्यापक वस्तु ही ज्ञान हैं'| 'ज्ञान में सप्रिक्त' रहने से जीवन को ज्ञान 'प्राप्त' हैं| सम्पूर्ण अस्तित्व, वास्तविकता हमारे पर प्रतिबिंबित हैं, प्रकाशित हैं| प्रत्येक इकाई अपने रूप-गुण-स्वभाव-धर्म सहित प्रकाशमान हैं| इस वास्तविकता, सत्यता को 'देखने' की क्षमता, 'स्तर' हमारे में विकसित होना हैं| अस्तित्व में कुछ 'नया' पैदा नहीं करना हैं: - जो अस्तित्व में पहले से था, है, रहेगा, उसके प्रति जागृत होना हैं| देखने का तात्पर्य समझने से हैं| ऐसे वास्तविकता (वस्तु) को इंगित करने वाले शब्द, परिभाषा, मध्यस्थ दर्शन द्वारा प्रस्ताव रूप में प्राप्त हैं| ध्यान से सुनने से श्रवण, पश्च्यात उसके अर्थ में जाने के लिए मनन,

अर्थ रूपी वस्तु के साथ तदाकार होना, साक्षात्कार-बोध होना - अर्थ रूपी वस्तु 'समझना', पश्च्यात सत्य (सहअस्तित्व) का अनुभव करना हैं| हम चाहते हैं, तो ऐसे कर सकते हैं|

10) 'उत्साह' के सात 'उत्सव'

- जिस भी स्तर में हमने वस्तु को 'समझा', उसी के साथ आंशिक रूप में जीने में आता हैं | 'आगे की स्तिथि पहले से ज्यादा अच्छी हैं', इस विधि से बढते हैं| पहले 'समझ' विचार स्वीकृती पूर्वक भाषा मे आता हैं (वाचिक), पश्च्यात चाहने और सोचने में (मानसिक), और पूरा समझ में आने से जीने में, करने में (कायिक) आता हैं| जितना समझें, उसके साथ सोचने, करने में गुणात्मक परिवर्तन होता ही हैं | अथ: भास, आभास अथवा साक्षात्कार-बोध के साथ हमें ज्ञान का 'फल' क्रमश: मिलता हैं |
- हम जहां थे, और आज जहाँ हैं, इसका उत्सव होता हैं, तो आगे के लिए उत्साह बनता हैं
- इसमें 'धैर्य पूर्वक' चलना होता है |

*** अनुभव होने से 'दृष्टा-पद' में आ जाते हैं – यही 'पारंगत' होने का तात्पर्य है | अनुभव के पश्च्यात प्रमाणित करने पर ही जाग्रति** हैं, यही 'मानव चेतना' हैं, निरंतर समाधान, सुख है | तब तक, हमारे में गुणात्मक विकास होते रहता हैं |

अभ्यास-अध्ययन प्रक्रिया में बाधा, समय लगने का कारण:

१) 'सूचना ग्रहण' (श्रवण) में कमी:

a) पढ़ना:

o मध्यस्थ दर्शन वांड्मय पड़ने में कमी |'**श्रवण** होने के पूर्व ही 'पढ़ चुके' हैं, मानना| जबकी, उससे अधिक अखबार भी पढते हैं...पूरा समझने तक शास्त्राध्ययन आवश्यक है |

b) सुनना:

o कल्पनाशीलता को नियोजित नहीं करना: स्वयं में सुनने में कमी, ध्यान से नहीं सुनना, मन नहीं लगाना (भाषा का अर्थ चित्रण में नहीं आना), स्वयं जीने, प्रमाणित होने के लिए नहीं सुनना

o 'हम जो चाहते है, वही सुनते है' – उस सूचना के बारे पहले से हमारे में जो बना हैं, उससे जोड़कर 'सुनना' - रुचिमूलक अर्थात 'प्रिय' दृष्टी से सुनना: |इस विधी से 'सुनना/श्रवण ही नहीं हुआ'

२) मनन: 'तात्विक वस्तु' के शोध में कमी

a) प्रस्ताव को **स्वयं में** नहीं जांचना

-
  - हमारा ध्यान, 'बाहर' से 'स्वयं' में नहीं आना:
    - प्रस्ताव, श्रवण किये वस्तु को 'स्वयं में जांचना, शोध' नहीं होना |पस्तक, बाहय बैसाखी पर निर्भरता लंबे समय बने रहना |(समय के साथ यह घटना आवश्यक है)
  - स्वयं से जोड़कर नहीं देखना:

- जीवन-शारीर अंतर पर कम ध्यान | स्वभाव, नियम, न्याय, स्वयं की आवश्यकता के रूप में नहीं देखना | जीवन ज्ञान, आस्तित्व दर्शन, स्वयं की आवश्यकता के रूप में नहीं देखना

b) शोध पूर्वक पढ़ने,में कमी:

- पुस्तकों का ‘सार’ नहीं निचोडना|
- साक्षात्कार की वस्तु चिन्हित नहीं होना
- ‘जड़ से फल तक’, स्पष्ट नहीं होना |

c) समग्रता:

- प्रिय-हित लाभ के दृष्टी, चित्रण प्रधान विधी से अभी चीजों कोns[krs gSAसब ‘कटा हुआ’ लगता हैं | ‘समग्रता’ आता नहीं

d) ‘अपने शर्तों’ पर समझना

- पहले से जो मान्यता, सोच-वीचार बना के रखे है, ठीख लगता हैं, उसके साथ इस प्रस्ताव को जोड़कर देखना | उसको ‘समझ’ मान लेना

३) मनन: ‘स्व-मूल्यांकन’ पर कम ध्यान: अपने स्तिथि को अनदेखी करना

a) स्वयं में इच्छा-विचार-आशा का समीक्षा-मूल्यांकन नहीं करना |

b) ‘मेरे सुख-दुःख का कारण मैं स्वयं हूँ, मुझे अपने आप को ठीख करना हैं’, यह निर्णित नहीं होना - स्वयं के स्तिथि के प्रती जिम्मेदारी नहीं स्वीकारना |

c) स्वयं में ‘अमानवीयता’ को अनदेखी |

d) आधूरे में रहते हुए ‘अहंकार’ अडना

4. मनन: 'सही जीने' पर कम ध्यान:

a) आचरण में स्व-नियंत्रण पर कम ध्यान, 'सामाजिक नियम' की अनदेखी–

- 'जीने के स्वरुप' को अनदेखी: 'स्व-धन' में नहीं जीना, स्वनारी/स्वपुरुष, दया पूर्ण व्यवहार (मानव संबंध में 'पूरकता पहचान') को अनदेखी
    - इसके जगह परधन, परनारी/परपुरुष, परपीड़ा (विरोध) की मानसिकता चाहत अथवा प्रयास

b) पहले से जो जीने की विधि हैं (सुविधा:संग्रह – अथवा भक्ति:विरक्ति) उसमे प्रस्तावना को समेटना

5. 'प्राथमिकता' बन्ने में समय का कारण:

a) पहले से जो बनाये रखे हैं, माने हैं, जीए हैं, और प्रस्तावित में दूरी

आचरण / जीना	**जीवन**	**अस्तित्व**
- चाहते हुए भी ugha'चाहते' ¼इच्छा नहीं होना, मात्रभाषा, कामना होना ½- अभी के माने हुए सम्बन्ध'बदलते' gSA- जीने में निष्ठां की कमी ¾ पूर्वाभ्यास, तोर –तरीके	- स्वय का अस्तित्व (माना हुआ) बदल जाना –स्वयं का शारीर से भिन्न अस्तित्व नहीं स्वीकारना : शरीर के साथ तदाकार	- 'दुनिया का स्वरुप बदल जाना ('सब कुछ बदल गया')- खींच-तान : 'पुराने' और 'नए' संसार में: पुराने और नए चित्रण में, iwoZ Le`frअड़चन करना

(ए न) [**"अध्ययन में अड़चन के ३ सबसे बड़े कारण**: - स्त्रोत: संवाद, सितम्बर २००९

o शरीर संबंधी कार्यक्रम को प्राथमिक मानना

o पूर्वाग्रह: जो पहले से सुने हैं

o पूर्वाभ्यास: जो पहले से जीए हैं, किये हैं "]

(ए न) [“अटकाव का कारण है आप अभी तक जैसे जीये हैं, उसके कुछ बिंदुओं को अच्छा माने रहना ” – स्त्रोत – *संवाद, भाग १, संस २०११, पृ ७७*]

b) अभ्यास-अध्ययन क्रम में कार्यक्रम प्रधान होना, न की ‘वस्तु’

a) वस्तु को फैलाने, बताने के लिए कार्यक्रम

o जैसे ही कुछ समझ में आता हैं/पता लगता हैं, ‘**दूसरों को कैसे बताएँगे**’ – ऐसा चित्र स्वयं में उभरता हैं|

o शीघ्र ही परोपकार में ध्यान चले जाना – स्वयं समझने के पहले ही ‘उपकार’ वरीय हो जाना

o *(* अभ्यास-अध्ययन क्रम में शिविर, गोष्टी के माध्यम से अभिव्यक्त होना सहायक है, यद्यपि वरीयता वस्तु को स्वयं समझना होना हैं, कार्यक्रम नहीं)*

b) वस्तु को समझने के लिए कार्यक्रम

o अथ: चित्रण या इच्छा में ‘*वस्तु के लिए कार्यक्रम* प्रधान हैं’; न की *वस्तु स्वयं*: जैसे, ऐसा करेंगे, पढेंगे, सुनेंगे, ..यह सब क्रायक्रम हैं |

o ‘कैसे समझना है’ भी ‘कार्यक्रम’ है | प्रक्रिया में चले जाते हैं, न की वस्तु में | प्रक्रिया पर स्पष्ट होना आवश्यक है, पश्च्यात उस प्रक्रिया को स्वयं में क्रियान्वन करना हैं | वरीयता वस्तु की, स्वयं समझने की होनी हैं |

c) उपरोक्त विधि में ‘करना’ प्रधान हैं, ‘स्वयं समझना’ उप-प्रधान है:

o जैसे यह लेख भी एक कार्यक्रम ही हैं | कार्यक्रम परावर्तन हैं, प्रत्यावर्तन नहीं | इसके जगह ‘वस्तु’ ही ‘कार्यक्रम’ होना | वस्तु की वरीयता को ध्यान में रखना हैं

6. अपने स्तिथि की गलत पहचान:

a) अधिमूल्यन

i. **'श्रवण पूरा हो गया हैं', मान लेना:**

- 'श्रवण' पूरा होने के पहले ही पूरा हो चूका हैं, मान लेना | जबकी, कुछ भाग 'श्रवण' हुआ रहता हैं, कुछ पुस्तकों में है, इसे अनदेखी करना | ऐसे स्तिथि में ज्ञान के लिए 'प्रतीक्षा' करना: जबकी ज्ञान के लिए स्वयं का *प्रयास* है, *जिज्ञासा* है | प्रतीक्षा नहीं

ii. **स्वयं के अनुमान को 'सही' मान लेना | आधूरे में स्वयं को 'समझा' हुआ मान लेना:**

- अर्थ तक जाने में कठिनाई: अपने चित्रण कोs 'अंतिमसत्य' मानना | अपने अनुसार सत्य का कोई तर्जुमा कर लेना| इसी को सही मान लेना (हठ: विचार बंधन, इच्छा बंधन) | अहंकार वश अपने प्रयास को श्रेष्ठ मान लेना |

- अध्ययन क्रम में हमारे में स्वभाव, धर्म, सत्य का भाषा और तर्क आ जाता हैं | इस भास्-आभास को 'समझ' मान लेना, स्वयं को 'समझा हुआ' मान लेना | बोल पाना, तर्क प्रस्तुत करना, nwljs dks crk nsuk, शिविर लेना, अपने में समझे रहने का कोई प्रमाण नहीं हैं | शिविर लेना] दिनचर्या, वातावरण, समझने के लिए सहायक है |

b) अवमूल्यन

i. अभ्यास-अध्ययन क्रम में स्वयं के गति का कम मूल्यांकन करना:

- साक्षात्कार को स्वयं में पहचान नहीं पाना
- इससे उत्साह की कमी | न्यूनतम, हम जहां खड़े थे, जहाँ हैं, इसमें गुणात्मक परिवर्तन है, ऐसे देख पाना | अध्ययन क्रम में हम कहाँ खड़े हैं, क्या शेष हैं, इसका सटीक आंकलन आवश्यक हैं | 'रास्ते पर चलकर ही लक्ष्य अथवा घर तक पहुँचते हैं' | इसके लिए रास्ते पर स्पष्टता होना हैं, और कितना चले है, कितना चलना शेष हैं, इसका आंकलन आवश्यक है

ii. **ऐसे होते हुए उपलब्धि की शीघ्र अपेक्षा**

- ‘तृप्ति हो जाये’, ‘मानवीयता आ जाए’, ‘अंतर्विरोध समाप्त हो’, इत्यादि
- ज्ञान एवं स्व-सुधार (आचरण) के लिए स्वयं में, स्वयं का प्रयास होना हैं |यह ‘आता नहीं’, ‘लाना’ पढता हैं |